॥ श्रीः ॥

श्रीमच्छङ्कराचार्य्य विरचितः

आत्मबोधः

टीकाकार—

पं० विश्वनाथ शर्म्मा ।

स च

फर्म—बाबू बैजनाथ प्रसाद

बुकसेलर महोदयेन

काश्यां

श्री विश्वेश्वर नाम्नि यन्त्रालये मुद्रितः प्रकाशितश्च ।

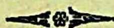
सन् १९५६ —०— मूल्य ।=)

श्रीमच्छङ्कराचार्य्य विरचितः

❀ आत्मबोधः ❀



गाज़ीपुरमण्डलान्तर्गत गवालापुरवास्तव्येन
पं० विश्वनाथशर्म्मणा संस्कृतटीका-
भषाटीकाभ्यां विभूषितः



स च-

फर्म-बाबू बैजनाथ प्रसाद बुक्सेलर,
महोदयेन
काश्यां विश्वेश्वर नाम्नियन्त्रालये
मुद्रितं प्रकाशितञ्च ।

सन् १८४६ —०— मूल्य ।-)

❀ ॐ ❀

❋ आत्मबोधः ❋



तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षूणामपेक्षोऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

अन्वयः—तपोभिः द्वन्द्वसहनादिभिः द्वन्द्वसहनं तपः (योग भाष्यम्) उपवासपरकादि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः । शरीर शोषणं प्राहुस्तपसां तप उत्तमम् ॥ क्षीणपापानाम् नष्टपापानाम् । येषां स्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ शान्तानामन्तरेन्द्रिय निग्रह कर्तृणाम् । वीतरागिणाम् वैराग्यवताम् । दृष्टानुश्राविकविषय वितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् इति योगसूत्रे स. पा. सू. १५ । मुमुक्षूणाम् मुक्तिसाधकानाम् अपेक्षः अयम् आत्मबोधग्रन्थः विधीयते विधानं क्रियते ।

भाषा—बहुत प्रकार की तपस्याओं से जिन्हों ने पापों का नाश कर दिया है, और इन्द्रियों को वश करने से जिनकी वृत्तियाँ शान्त होगयी हैं । मोक्ष चाहने वाले उन मुमुक्षुओं के हित यह आत्मबोध बनाया जाता है ।

अवतरण—मोक्षके और भी साधन शास्त्रों में मिलते हैं किन्तु आत्मज्ञान मोक्ष का मुख्य साधन है । इसीको स्पष्ट बताते हैं ।

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥२॥

अन्वयः—हि यतः अन्यसाधनेभ्यः. इतरमोक्षसम्पादक साधनेभ्यः यथा-किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम्। श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम ॥ यत्परं यद्गुणाऽतीतं यज्ज्योतिरमलं शिवम्। तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्। इत्यादीनि अन्यसाधनानि। तेषु मोक्षैकसाधनं मुख्यसाधनं बोधः आत्मज्ञानमेव। पाकस्य यथा अन्यान्यपि घटेन्धनानि साधनानि सन्ति परं तेषु मुख्यसाधको वह्निः वह्न्यभावे सर्वाणि साधनानि निष्फलानि। तथैव ज्ञानं विना आत्मज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति मोक्षो अन्यानि स्नान, जप, ध्यानानि सहकारि साधनानि मुख्यसाधनं ज्ञानमेव यथा ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। ज्ञानादेव तु कैवल्यम्। तपसा कल्मषं हन्ति विद्ययाऽमृतमश्नुते।

भाषा—मोक्षके जप, तप, ध्यान इत्यादि जितने साधन शास्त्रों में कहे गये हैं, उनमें मोक्षका मुख्य साधन आत्मज्ञानही है। जैसे पाक बनाने में घड़ा लकड़ी प्रभृति भी कारण हैं। किन्तु वे सब सहकारि साधन हैं। मुख्य कारण अग्निही है। उसी प्रकार विना ज्ञानके जप, तप, ध्यान कुछ नहीं हो सकता।

अवतरण—जो जिसका विरोधी होता है वही उसका निवर्तक भी होता है। अतः श्रेष्ठ कर्म विरोधी न होनेसे अज्ञान का निवर्तक नहीं है।

अविरोधितया कर्म नाविद्यां विनिवर्तयेत्।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—कर्म श्रेष्ठकर्म अविद्यां अज्ञानं अविरोधितया न विनिवर्तयेत् दूरीकर्तुं न समर्थं भवेत्। यथा तेजस्तिमिरनाशने समर्थः तथा विद्या अविद्यां अज्ञानं निहन्त्येव नाशयत्येव। अविद्या यथा—अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या अस्वे स्वमिति या मतिः। अविद्या तत्संभूतिबीजमेतद्द्विधा स्थितम् ॥

भाषा--कर्म और अविद्या एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं विरोधी जैसे अन्धकार का प्रकाश, शीत का उष्ण, अज्ञान का ज्ञान इत्यादि। इससे कर्म अविद्या को दूर नहीं कर सकता बल्कि विद्या और अविद्या एक दूसरे के परस्पर विरोधी हैं अतः जैसे तेज अन्धकार का नाश कर देता है, उसी तरह विद्या, (ज्ञान) अविद्या, (अज्ञान) का नाश करती ही है। रज्जू में सर्प का जो अज्ञान है उसका नाश ज्ञानही करता है।

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः।
स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेऽंशुमानिव ॥ ४ ॥

अन्वयः—मेघापाये मेघनाशे स्वच्छे व्योम्नि अंशुमान् इव सूर्य्य इव आत्मा अज्ञानात् परिच्छिन्न इव आवृत इव तन्नाशे अज्ञाननाशे सति केवलः अज्ञानरहितः अद्वितीयः स्वयं प्रकाशते प्रतीतो भवति।

भाषा—सूर्य्य प्रकाशरूप होनेपर भी जिस प्रकार बादलों से ढक जाने के कारण प्रतीत नहीं होता है, ठीक उसी प्रकार यह आत्मा जब तक अज्ञान से घिरा रहता है तब तक आत्मत्व का ज्ञान नहीं होता, जब अविद्या का नाश हो जाता है तब स्वयं प्रकाशवान् ब्रह्मरूप प्रतीत होने लगता है।

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम्।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥

अन्वयः—कतकरेणुवत् जलं निर्मलं कृत्वा स्वयं नश्येत् कतकरेणुः यथा जलं विमलं कृत्वा स्वयमपि तत्रैव तिरोभवति तथैव ज्ञानाऽभ्यासात् अहमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चनेत्यभ्यासात् अज्ञान

कलुषं अहं भोक्तेत्यादि मन्यमानं जीवं जीवात्मानं निर्मलं कृत्वा स्वयं नश्येत् ।

भाषा—जैसे—निर्मली मैले पानी को साफ करके स्वयं भी नष्ट हो जाती है, वैसे ही ज्ञान के अभ्यास से अर्थात् केवल एक ब्रह्म ही है, उसके अतिरिक्त और जो कुछ है प्रपञ्च है, नश्वर है, माया है, इस प्रकार का ज्ञान का अभ्यास अज्ञान से मलिन जीव को जैसा "भूमि परत भा डाबर पानी, जिमि जीवहिं माया लपटानी ।" अर्थात् मैं ही करनेवाला हूँ, मैं ही भोक्ता हूँ, इस प्रकार अज्ञानावृत जीवात्मा को निर्मल करके आप भी नष्ट हो जाता है ।

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ।
स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—रागद्वेषादिसंकुलः, रागद्वेषादिव्याप्तः संसारः संसरन्ति जीवाः अस्मिन् इति, स्वप्नतुल्यः हि यतः स्वकाले स्वप्न समये सत्यवद्भाति यथार्थं एवायमिति भासते । प्रबोधे निद्राऽपगमे असत्यवद्भवेत् ।

भाषा—रागद्वेषादि से भरा हुआ यह संसार स्वप्न के बराबर है। क्योंकि स्वप्न के समय की अवस्था स्वप्न काल ही में सत्य के समान दीख पड़ती है । जागजाने पर सब मिथ्या हो जाती है । इसी प्रकार जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं हुआ है तब तक संसार स्वप्न के समान सत्य प्रतीत होता है, आत्मा और ब्रह्म की एकता का जब ज्ञान हो जाता है तब जगत् मिथ्या दीख पड़ने लगता है ।

अवतरण—यह संसार जब वास्तव में मिथ्या है तब असत्य सत्य के समान कैसे कब तक भासता है । इसी को स्पष्ट करते हैं ।

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिका रजतं यथा।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—यथा यावत् न ज्ञायते शुक्तिका रजतम् तावदेव तथा सत्यं भाति। तथैव यावत् सर्वाधिष्ठानं अद्वयं ब्रह्म न ज्ञायते तावदेव जगत् सत्यं भाति।

भाषा—जैसे सीप में चाँदी का जब तक भ्रम है कि-यह सीप है या चाँदी तभी तक सीप भी चाँदी दीख पड़ती है। उसी प्रकार जब तक सर्वाधिष्ठान ब्रह्म का अद्वैत ज्ञान नहीं हुआ है, तब तक यह जगत् सत्य देख पड़ता है, पीछे ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर झूठा देख पड़ने लगता है।

अवतरण—यह सब जगत् ब्रह्म में कैसे किस प्रकार कल्पित है-इसी को स्पष्ट करते हैं।

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

अन्वयः—सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ सर्वाः विविधाः व्यक्तयः प्रकल्पिताः हाटके कटकादिवत्।

भाषा—सत्, चित्, आनन्द आत्मा, जिस प्रकार सुवर्ण में कटक कुन्डलादि भूषण कल्पित हैं, अर्थात् कटक कुन्डलादि विविध भूषणों के टूटने पर सुवर्ण ही रहता है, पहले का न तो नाम ही रहता है और न रूप ही, उसी प्रकार नित्य जिसका कभी नाश नहीं होता और व्यापक जो सब में है उस सच्चिदानन्द आत्मामें विविध व्यक्तियाँ कीट पतंगादि कल्पित हैं। व्यक्तियों में आत्मा है, और

आत्मा में व्यक्तियाँ हैं। मनुष्य, कीट आदि नाम और तत्तत् रूप के न रहने पर आत्मा ही आत्मा रहता है।

अवतरण—ब्रह्म नामरूप उपाधि भेद से भिन्न होने पर भी उपाधि के न रहने पर केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है इसी को स्पष्ट करते हैं—

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ ९ ॥

अन्वयः—नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः आत्मनि आरोपिताः सन्ति तोये रसवर्णादिभेदवत्।

भाषा—अनेक प्रकार की उपाधियों के कारण जाति, नाम आश्रम आदि आत्मा में आरोपित हैं। जैसे जल में कड़ुवा, मीठा, तीता मिला देने से जल का वैसा ही स्वाद तथा नील, पीत रंग मिला देने से नील, पीत रंग भी मालूम पड़ने लगता है, किन्तु यथार्थतः जल में न वह रंग ही है न वह स्वाद ही है इसी प्रकार सब उपाधियाँ आत्मा में कल्पित हैं। यथार्थ में जैसे जल शुद्ध और निर्मल है उसी प्रकार आत्मा भी शुद्ध और निर्मल है।

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसंचितम्।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ १० ॥

अन्वयः—पंचीकृतमहाभूतसम्भवं कर्मसंचितं शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते।

भाषा—पञ्चीकरण किए गए जो पृथ्वी आदि पञ्च भूत उनसे

उत्पन्न हुआ और प्रारब्धके कर्मों से बना हुआ जो शरीर है वह सुख दुःख के भोगनेका स्थान है।

पञ्चप्राणमनोबुद्धिदशेन्द्रियसमन्वितम्।
अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्॥ ११॥

अन्वयः—श्लोकाऽनुरूपम्।

भाषा—पंच प्राण[1] मन, बुद्धि, और दश इन्द्रियाँ सब सत्रह अंगों से युक्त अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतों से सुसज्जित सूक्ष्म शरीर भोग का स्थान है।

अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत्॥ १२॥

अन्वयः—अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिः उच्यते आत्मानं उपाधित्रितयात् अन्यं अवधारयेत्।

भाषा—अनादि और अनिर्वाच्या जो अविद्या वही कारणोपाधि है। किन्तु आत्मा को तीनों उपाधियों से भिन्न मानना चाहिये। तीन उपाधियाँ, स्थूल, सूक्ष्म-कारण।

अवतरण—यह आत्मा जब पञ्च कोशादिकों के योग से पञ्च-कोशमय है, तब उपाधियों से भिन्न कैसे कहा इसीको स्पष्ट करते हैं।

पञ्चकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।
शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फटिको यथा॥ १३॥

---

[1] प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान। पाँच ज्ञानेन्द्रिय—आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा। पाँच कर्मेन्द्रिय गुदा, लिंग, हस्त, पाद, मुख।

अन्वयः—यथा स्फटिकः नीलवस्त्रादियोगेन तत्तन्मय इव भाति, तथा शुद्धात्मा पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः।

भाषा-जिसप्रकार स्फटिक नीले पीले वस्त्रों के योगसे नीला पीला दीख पड़ता है किन्तु है सफेद। इसी तरहसे आत्मा भी शुद्ध है परन्तु पंञ्चकोशादिकों के योगसे पञ्चकोशमय मालूम होता है।

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्याऽवघाततः।
आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तण्डुलं यथा ॥ १४॥

अन्वयः—यथा तुषादिभिर्युक्तं तण्डुलं वपुः अवघाततः तथा युक्त्या कोशैः युक्तं आत्मानम् अनन्तरम् शुद्धं विविच्यात्।

भाषा—जिस प्रकार कूटकर धानके छिलकों के छील देने पर चावल प्राप्त किये जाते हैं, उसी प्रकार युक्ति से अवघात द्वारा पञ्चकोश रूप छिलकों से ढकी हुई आत्माको अलग कर शुद्ध आत्मा की विवेचना करनी चाहिए।

अवतरण—आत्मा जब व्यापक है तब सर्वत्र क्यों नहीं प्रतीत होता है इसीको स्पष्ट करते हैं।

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्राऽवभासते।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् ॥
यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥ १५ ॥

१—पञ्चकोश—अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश।

अन्वयः—यथा आकाशः विभुः नानोपाधिगतः तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः तथा हृषीकेशः।

भाषा—जिस प्रकार आकाश व्यापक है परन्तु घट, मठ, कुशूल, आदि उपाधियों में प्राप्त होने से घटाकाश, मठाकाश इत्यादि उपाधिभेद से भिन्न भिन्न प्रतीत होता है, और घटादिकों के नाश हो जाने पर केवल आकाश ही आकाश रह जाता है, उसी प्रकार हृषीकेश सम्पूर्ण इन्द्रियों का परमात्मा देहादि उपाधियों में प्राप्त हो जाने से भिन्न भिन्न प्रतीत होता है, किन्तु उसके नाश हो जाने के बाद केवल ब्रह्म ही ब्रह्म रह जाता है।

अवतरण—यह आत्मा जाति, नाम, आश्रम आदि उपाधियों से युक्त प्रतीत होता है यह असंग कैसे है इसी को स्पष्ट करते हैं।

आत्मा सदा सर्वगतोऽपि सर्वत्र नाऽवभासते।
स्वच्छेषु प्रतिबिम्बवत् बुद्धावेवावभासते॥ १६॥

भाषा—आत्मा सदा सब जगह व्याप्त है किन्तु उसका अवभास सब जगह नहीं होता बल्कि बुद्धि में ही होता है। जैसे मुह का प्रतिबिम्ब लकड़ी में या मट्टी में नहीं होता, दर्पणही में होता है।

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम्।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा॥ १७॥

अन्वयः—राजवत् आत्मानं सदा देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रवृत्तिभ्यो-विलक्षणं तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यात्।

भाषा—जैसे सभा में बैठा हुआ राजा सबका साक्षी है, प्रेरक है परन्तु सबसे भिन्न है, उसी प्रकार आत्मा भी देह, इन्द्रिय, मन,

बुद्धि, प्रकृति इनसे विलक्षण और इन्द्रियादिकों की वृत्तियों का अर्थात् दर्शन स्पर्शन आदि का साक्षी जानना चाहिये।

व्यापृतेष्विन्द्रियेष्वात्मा व्यापारीवाऽविवेकिनां।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८ ॥

अन्वयः—यथाऽभ्रेषु धावत्सु शशी धावन् इव दृश्यते तथैव इन्द्रियेषु व्यापृतेषु अविवेकिनाम् आत्मा व्यापारी इव दृश्यते।

भाषा—जैसे आकाश में मेघ के दौड़ने से चन्द्रमा दौड़ता हुआ दिखाई देता है किन्तु दौड़ता नहीं, उसी प्रकार अज्ञानी पुरुषों की आत्मा इन्द्रियाँ व्यवहार करती हैं तब व्यवहारी ऐसा देख पड़ता है, किन्तु आत्मा में कोई भी व्यापार नहीं है। जैसे चन्द्रमाके दौड़ने में भ्रम है उसी प्रकार भ्रम है।

आत्मा चैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः।
स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यलोकं यथा जनाः ॥ १९ ॥

अन्वयः—यथा जनाः सूर्यालोकम् आश्रित्य स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते। तथैव देहेन्द्रियमनोधियः आश्रित्य स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते।

भाषा—जैसे सब लोग सूर्य्य के प्रकाश हो जाने पर उसी के आश्रय से अपने कार्य करते हैं इसी प्रकार आत्मा के ही चैतन्य के आश्रय से देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अपने अर्थ में प्रवृत्त होते हैं। अतः देह, इन्द्रिय आदिक स्वतः चेतन नहीं हैं। बल्कि आत्मा की चेतनता उनमें जान पड़ती है। स्वयं चैतन्य नहीं होने से वे आत्मा के तुल्य नहीं हो सकते हैं।

देहेन्द्रियगुणान् कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि ।
अध्यस्यन्त्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

अन्वय- देहेन्द्रियगुणान् कर्माणि च अमले सच्चिदात्मनि अविवेकेन गगने नीलिमादिवत् अध्यस्यन्ति ।

भाषा—जिसप्रकार अज्ञानवश आकाशमें नील, पीत, रंगों को मानते हैं। यह मानना केवल अज्ञान मात्र है उसमें वैसा रंग नहीं है, उसी प्रकार सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा में देह और इन्द्रियोंके जो गुण और कर्म हैं जैसे सुनना, देखना, बोलना, चलना, जन्म लेना, मरना इत्यादि अन्धापन, बहिरापन, आदि इनको अज्ञानी लोग अज्ञानवश आरोप कर लेते हैं, किन्तु आत्मा में जन्म, मरण, इत्यादि कोई भी धर्म नहीं है ।

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।
कल्प्यन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथा भ्रमः ॥ २१ ॥

अन्वयः—यथा अम्भमः चलनादिः भ्रमः अम्बुगते चन्द्रे कल्प्यन्ते तथैव अज्ञानात् मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि आत्मनि कल्प्यन्ते ।

भाषा—अज्ञानी लोग अज्ञानवश जिसप्रकार जलके हिलने, चलने, से धर्म को जलके बीच पड़ी हुई चन्द्रमा की परछाईं में मान लेते हैं कि जल नहीं चलता हिलता है, किन्तु चन्द्र-बिम्बही चलता है । उसी प्रकार अज्ञानसे मनकी कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि उपाधियों को कि मैं कर्ता हूँ, भोक्ता हूँ, पुण्यवान हूँ, मैं पापी हूँ, इत्यादि प्रतीत होने से आत्मा कर्ता भोक्ता प्रतीत होता है यह अयथार्थ है । क्योंकि कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अन्तः

करण के धर्म्म हैं वे करण और आत्मा की एकरूपता से आत्मा में प्रतीत होते हैं। किन्तु हैं नहीं।

रागेच्छा सुखदुःखादिबुद्धौ सत्यां प्रवर्तते।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ॥२२॥

अन्वयः—रागेच्छा सुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते सुषुप्तौ तन्नाशे नास्ति तस्मात् बुद्धेः अस्ति आत्मनः न।

भाषाः—राग, इच्छा, सुख और दुःख,—राग किसी को देख कर रुष्ट हो जाना, किसी वस्तु की मिलने न मिलने की इच्छा तथा मनोऽनुकूल सुख और प्रतिकूल दुःख आदि सम्पूर्ण धर्म जाग्रत अवस्था में बुद्धि रहती है तो होते हैं, सुषुप्ति अवस्थामें अपने कारण रूप अज्ञानमें बुद्धिका लय हो जानेसे कोई भी धर्म्म प्रवृत्त नहीं होता है। इस कारण अन्वय व्यतिरेकसे यानी 'तद्भावे तद्भावः तत्सत्त्वे तत्सत्वम्' अर्थात् बुद्धिके रहने पर रागादिका होना, अन्वय बुद्धिके लय हो जाने पर रागादिकों का न होना व्यतिरेक से राग द्वेष आदि सब धर्म्म बुद्धि के ही हैं आत्माके नहीं हैं।

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता।
स्वभावः सच्चिदानंदनित्यनिर्मलताऽऽत्मनः ॥ २३ ॥

अन्वयः—यथा अर्कस्य स्वभावः प्रकाशः, तोयस्य शैत्यं, अग्नेः उष्णता तथैव आत्मनः स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलता।

भाषा—जैसे सूर्य का प्रकाश स्वभाव है जलका शीतस्वभाव है अग्निका उष्ण स्वभाव है, इसी प्रकार आत्माका, सत् चित् आनन्द नित्य निर्मल स्वभाव है।

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम्।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

अन्वयः—आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेः वृत्ति इति द्वयम् संयोज्य जानामि इति अविवेकेन प्रवर्तते।

भाषा—आत्माका सत्-चित्-अंश बुद्धिकी वृत्ति में प्रतिबिम्बित होता है। और अज्ञान रूप आनन्द का अंश जो बुद्धि की वृत्ति है इन दोनों को अविवेक से मिलाकर मैं जानता हूँ, सुखी हूँ, दुःखी हूँ, इन सब व्यवहारों में जीव प्रवृत्त होता है वास्तवमें आत्मा किसी का संगी नहीं फिर ऐसे आत्मामें सुख दुःख नहीं हो सकते। क्योंकि ज्ञात भी बुद्धिका परिणाम है और सुखाकार वृत्ति भी। आत्मा में जो इतका प्रतीति है वह बुद्धि और आत्माकी एकता के भ्रम से है। इससे आत्मा निर्विकार सच्चिदानन्द रूप है।

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ॥
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥ २५ ॥

अन्वयः—आत्मनः विक्रिया नास्ति बुद्धेः जातु बोधः न जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्त्ता द्रष्टा इति मुह्यति।

भाषा—आत्मा का विकार नहीं अर्थात् आत्मा विकार रहित है। निर्गुण है क्रियारहित है। कभी भी बुद्धिमें ज्ञान नहीं होनेका कारण यह है कि बुद्धि मायाका कार्य होनेसे जड़ है फिर भी अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित चेतनकी चेतनतासे देह इन्द्रिय आदि जड़ पदार्थ चेतनरूप प्रतीत होते हैं इससे आत्मा के और अन्तःकरण के अभेद ज्ञानसे बुद्धिके कर्त्ता, भोक्ता यह सब धर्म्म

भ्रमसे आत्मामें प्रतीत होते हैं। इससे जीव सबको अपने में जानकर मैं कर्त्ता हूँ, मैं द्रष्टा हूँ, इस प्रकार भ्रम में पड़ा है।

रज्जुः सर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत।
नाऽहं जीवः परात्मेति ज्ञात चन्निर्भयो भवेत् ॥ २६ ॥

अन्वयः—यथा पुरुषः रज्जुःसर्पवत् भयं वहेत् तथैव पुरुषः आत्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् अहं जीवः न परात्मा इति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्।

भाषा—जिस प्रकार लोग रस्सी, को भ्रमसे साँप जानकर भय-भीत होकर दुःख पाने लगते हैं उसी प्रकार भ्रमवश आत्माको जीव मानकर दुःखी है। मैं जीव नहीं हूँ किन्तु परमात्मा हूँ ऐसा ज्ञान होने से निर्भय हो जाता है, क्योंकि सब दुःखों का कारण भ्रम है।

आत्माव भासयत्येको बुद्ध्यादीनिन्द्रियाणि च।
दीपोघटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥ २७ ॥

अन्वयः—इन्द्रियाणि बुद्ध्यादीनि च एकः आत्मा दीपः घटादिवत् अवभासयति जडैः तैः स्वात्मा न अवभास्यते।

भाषा-जिस प्रकार दीपक घटादिकों को प्रकाशित करता है उसी तरह एकही आत्मा सब इन्द्रियों को और बुद्ध्यादिकों को प्रकाशित करता है। जड़ इन्द्रियादिकों से आत्मा प्रकाशित नहीं होता। जैसे ईंटा पत्थर दीपक को प्रकाशित नहीं कर सकते। इसी कारण आत्मा चैतन्य है। मन बुद्धि आदिको जानता है। मन बुद्धि आदि जो जड़ हैं आत्माको नहीं जानते हैं।

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयाऽऽत्मनः ।
न दीपस्याऽन्य दीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते ॥२८॥

अन्वय—यथा दीपस्य अन्य दीपेच्छा न तथा आत्मनः बोधरूपतया स्वतो बोधे अन्य बोधेच्छा न यतः स्वात्मा स्वयं प्रकाशते ।

भाषा—जिस प्रकार दीपक को प्रकाश करने के लिये दूसरे दीपक की अपेक्षा नहीं होती है । उसी प्रकार आत्मा को बोध रूप होने के कारण दूसरे के बोध की अपेक्षा नहीं होती । क्योंकि आत्मा तो स्वयं प्रकाशित है ।

अवतरण—आत्मा स्वयं मुक्त होता हुआ भी उसके मुक्ति के लिये श्रवण, मनन आदि की आवश्यकता पड़ती है इसी को स्पष्ट करते हैं ।

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीति वाक्यतः ।
विद्यादैक्यं महावाक्यैः जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २६ ॥

अन्वयः—नेति नेति इति वाक्यतः निखिलोपाधीन् निषिध्य महावाक्यैः जीवात्मपरमात्मनोः ऐक्यं विद्यात् ।

भाषा—नेति नेति इस वाक्य से सम्पूर्ण उपाधियों का निषेध करके तत्वमसि आदि महा वाक्यों से जीव और परमात्मा की एकता को जाने और आत्मा से भिन्न का त्याग करे यानी आत्मा से भिन्न को जड़ और अनित्य समझे । इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कार्य कारण रूप नामरूपात्मक जगत् को अनित्य जानने के अनन्तर इन महावाक्यों से जीव और परमात्मा की एकता को जाने । उस एकता रूपी ज्ञान को ही मुक्ति का कारण बताते हैं । "वह ब्रह्म तू है" यह जीवात्मा ब्रह्म है, प्रज्ञान ब्रह्म है, मैं ब्रह्म हूँ । और महा-

वाक्यों से एकता को ज्ञान का प्रकार यह है कि, दोनों पद जहाँ वाच्य वाचक भाव से एक अर्थ में वर्तते हैं उसको सामानाधिकरण्य कहते हैं। और वाच्य उसको कहते हैं जिसके शब्द का उच्चारण करते ही ज्ञान हो जैसे देवदत्त के उच्चारण करते ही देवदत्त का, और वाचक उसको कहते हैं जिसके उच्चारण से पदार्थ जाना जाय जैसे देवदत्त शब्द अर्थात् देवदत्त शब्द और उसका वाच्य वाचक भाव आदि सम्बन्ध है। वह सम्बन्ध तीन प्रकार का होता है— सामानाधिकरण्य, विशेषणविशेष्यभाव, लक्ष्यलक्षण भाव, उसमें सामानाधिकरण्य, मुख्य सामानाधिकरण्य और बाधसामानाधिकरण्य भेद से दो प्रकार का है। जिस वस्तु का जिस वस्तु के साथ सदैव अभेद हो वह मुख्य सामानाधिकरण्य। जैसे लोहे के टुकड़े का लोहा और हथियार का टूटा हुआ लोहा। और जहाँ किसी अंश को बाधकर अभेद हो वह बाधसामानाधिकरण्य जैसे हथिआर के नामरूप को बाधकर दोनों पूर्वोक्त लोहा अभेद होता है। अथवा जहाँ दो पदों का परस्पर भेद हो और अर्थ एक हो वह बाधसामानाधिकरण्य होता है। जैसे घट, कलश यहाँ शब्द भेद होने पर भी मृत्तिकारूप लक्ष्य एक है। अथवा सोऽयं देवदत्तः इस वाक्य में सः अयं देवदत्तः यह तीन पद हैं। उसमें सः पद उस परोक्ष काल में दृष्टका बोधक है और अयं यह पद वर्तमान काल वृत्तिका बोधक है। ऐसे दोनों पदों का भिन्न २ अर्थ है। परन्तु दोनों पदों का तात्पर्य एक देवदत्त में है। इससे देशकाल रूप विशेषण के परित्याग से देवदत्त रूप पिंडमात्र का बोध होता है। इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में परोक्ष आदि विशेषण

विशिष्ट चेतन तत्पद का वाच्य अर्थ है। और अपरोक्ष आदि विशेष विशिष्ट चेतन त्वं पद का वाच्य अर्थ है। इन दोनों पदों का अर्थ भिन्न २ है और तात्पर्य शुद्ध चेतन के विषय में है। इससे परोक्ष अपरोक्ष आदि विशेषणों के त्याग से चेतन रूप अर्थ में दोनों का सामानाधिकरण्य है। यह सामानाधिकरण्य प्रथम है। और इसका विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध यह है कि जैसे सोऽयं देवदत्तः यहाँ सः अयं ये पद हैं। देवदत्त पद के विशेषण हैं और देवदत्त विशेष्य है और ये दोनों अपने अपने देशकाल रूप अर्थ को छोड़कर देवदत्त के स्वरूप जो बोधन करते हैं। इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में भी तत्पदका अर्थ परोक्ष आदि विशेषण सहित चेतन है विशेषणों को त्यागकर दोनों का असि इस पद में सामानाधिकरण्य हैं। तीसरा सम्बन्ध लक्ष्य लक्षण भाव है जैसे सोऽयं देवदत्त यहाँ से अयं इन दो पदों से देशकाल आदि विशेषणों को छोड़कर देवदत्त मात्रका बोध होता है। इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में भी तत्पद का अर्थ अद्वितीय-परोक्ष व्यापक चेतन है और त्वं पदका अर्थ सद्वितीय-अपरोक्ष परिच्छिन्न चेतन है। इन विरुद्ध धर्मों को त्याग कर एक चेतन जो विरुद्ध धर्म रहित लक्ष्य अर्थ है उसका बोध होता है। इस प्रकार पूर्वोक्त तीनों सम्बन्धों से लक्षणा के द्वारा जीव और ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है। और वह लक्षणा जहत्-अजहत् जहदजहद् भेद से तीन प्रकार की है जैसे गंगा में घोस यानी अहीरों का गाँव। यहाँ गंगा में गाँव का होना असम्भव है इसलिये गंगापद का अपने प्रवाह रूप अर्थ को छोड़कर तीर

में लक्षणा होती है, क्योंकि जहाँ पद अपने सम्पूर्ण अर्थ को छोड़दे वह जहत् लक्षणा है और महावाक्यों में चेतन रूप अर्थ दोनोंका एक है। इससे अर्थ का त्याग न होने से जहत् लक्षणा नहीं हो सकती है "अरुणः धावति" यहाँ लाल रंगमें दौड़ना असम्भव है इससे अरुण पदकी लाल घोड़े में लक्षणा है यहाँ अरुण पद की अपने लाल रूप अर्थ को न छोड़कर लाल घोड़े में अजहत् लक्षणा होती है। क्योंकि जहाँ अपने अर्थ को न छोड़कर पद दूसरे अर्थ को कहे वहाँ अजहत् लक्षणा होती है। यह लक्षणा भी महावाक्यों में नहीं हो सकती है क्योंकि उनमें सम्पूर्ण वाच्य अर्थ का ग्रहण नहीं हो सकता और जहाँ किञ्चित अर्थ का त्याग और किञ्चित् का ग्रहण होता है वह जहदजहद् लक्षणा समझी जाती है। यही लक्षणा महावाक्यों में इस प्रकार घटती है। जैसे सोऽयं देवदत्तः इस वाक्य में देश काल और पुष्ट कृशका त्याग है पिण्ड मात्र देवदत्त का ग्रहण है ऐसेही तत्त्वमसि आदि महावाक्यों में समष्टि, व्यष्टि, स्थूल सूक्ष्म आदि विरुद्ध अंशको त्याग कर व्यापक अखण्ड चैतन्य मात्र का जहदजहत् लक्षणा से बोध होता है इसीको भाग त्याग लक्षणा भी कहते हैं।

आविद्यिकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम् ॥
एतद्विलक्षणं विन्द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—आविद्यिकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षरं ज्ञेयं एतद्विलक्षणं निर्मलं अहं ब्रह्मेति विन्द्यात्।

भाषा—अविद्यासे कल्पित जो शरीर आदि जड़ दीखते हैं

उनको पानी के बुद्बुदे के समान नाशवान् जानना चाहिये इनसे विलक्षण निर्मल विकार रहित जो ब्रह्म है वही मैं हूँ ऐसा समझना चाहिए ।

देहान्यत्वान्न मे जन्म जराकार्श्यलयादयः ।
शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रियतया न च ॥३१॥

अन्वयः—देहान्यत्वात् में जन्म जराकार्श्यलयादयः न निरिन्द्रियतया च शब्दादिविषयैः सङ्गः न ।

भाषा—यहाँ जीव ब्रह्म की एकता को किस प्रकार मनन करना चाहिये उसी को बताते हैं ।

अन्तरार्थ—स्थूल और सूक्ष्म शरीर से मैं अलग हूँ । इस कारण मेरा जन्म बुढ़ापा, मरण आदि नहीं है । यानी मुझे क्षुधा पिपासा आदि भी जो देह के धर्म हैं वे भी नहीं हैं क्योंकि मैं आनन्दरूप हूँ । मैं इन्द्रियों से रहित हूँ, इसलिये शब्दस्पर्श आदि गुणों से मेरा संग नहीं है मैं निर्मल ब्रह्म हूँ । आपसा जानना चाहिये ।

अमनस्त्वान्न मे दुःख रागद्वेषभयादयः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादि श्रुतिशासनात् ॥३२॥

अन्वयः—अमनस्त्वात् दुःखरागद्वेषभयादयः अप्राणः श्रुतिशासनात् शुभ्रः ।

भाषा—मैं मन से भिन्न हूँ । इस कारण, मेरे में दुःख राग द्वेष भय आदि मन के कोई भी धर्म्म नहीं हैं और प्राणों से भिन्न हूँ इसलिये प्राण के धर्म्म भी क्षुधा पिपासा आदि हम में नहीं हैं ।

श्रुतियों के कथनानुसार परमात्मा प्राण से भिन्न है और मन से भी शुभ्र यानी अविद्या के मल से रहित है, सच्चिदानन्द निर्विकार है।

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्यधारिणी ॥३३॥

अन्वयः—प्राणः मनः सर्वेन्द्रियाणि खं वायुः ज्योतिः आपः विश्वस्य धारिणी पृथ्वी च एतस्मात् ब्रह्मणः जायते।

भाषा—प्राण मन सब इन्द्रियाँ आकाश वायु ज्योति जल संसार को धारण करने वाली पृथ्वी ये सब उसी ब्रह्म से उत्पन्न होते हैं।

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः।
निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ॥३४॥

अन्वयः—अहं निर्गुणः निष्क्रियः नित्यः निर्विकल्पः निरंजनः निर्विकारः निराकारः नित्यमुक्तः निर्मलः अस्मि।

भाषा—मैं गुणों से रहित हूँ यानी माया के जो जो राग द्वेष आदिक गुण हैं वे मुझ में नहीं हैं। निष्क्रिय हूँ। अर्थात् हममें किसी प्रकार की क्रियायें माया कृत नहीं हैं। नित्य हूँ। मेरा कभी भी नाश नहीं होता, निर्विकल्प हूँ। यानी हम में किसी प्रकार संकल्प में विकल्प नहीं है। निरंजन यानी माया का जो मान है वह मुझमें नहीं है। निर्विकार हूँ यानी विकार से रहित हूँ। निराकार हूँ याने मेरा कोई आकार नहीं है। नित्य मुक्त हूँ यानी मोह लोभ आदि बन्धनों से छूटा हुआ हूँ। निर्मल हूँ यानी किसी प्रकार का मल मुझमें नहीं है।

अहमाकाशवत्सर्वं बहिरन्तर्गतोऽच्युतः।
सदा सर्वसमःशुद्धो निःसंगो निर्मलोऽचलः ॥ ३५ ॥

अन्वयः—अहं सदा आकाशवत् सर्वं बहिरन्तर्गतः सदा सर्वं समः अच्युतः शु ...निःसंगः निर्मलः अचलः अस्मि।

भाषा—मैं सब समयमें आकाश के तुल्य सब के यानी जड दृश्य पदार्थों के भीतर व्यापक हूँ और सब से भिन्न अर्थात् किसी में नहीं हूँ। यदि ऐसा है तो सब के नाश हो जाने पर आत्माका भी नाश हो जाना चाहिए, ऐसा नहीं क्योंकि मैं अच्युत हूँ। यानी मैं कभी च्युत नहीं होता मेरा कभी नाश नहीं होता है क्योंकि मैं अधिष्ठान रूप हूँ।

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं यत्परं ब्रह्माहमेवतत् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—यत् नित्यशुद्धविमुक्तैकम् अखण्डानन्दम् अद्वयम् सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् परं ब्रह्म तत् अहमेव।

भाषा—मैं नित्य यानी त्रिकाल में बाध रहित हूँ। जैसा कि (नित्योनित्यानां चेतनं चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्)। इत्युपनिषत्। शुद्ध यानी—अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश आदि से रहित होने के कारण शुद्ध ज्ञान स्वरूप। (केवल ज्ञान मात्र) विमुक्त—यानी बन्धन रहित, एक यानी सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित अखंड यानी त्रिविध[1] परिच्छेद रहित। आनन्द यानी—सुखस्वरूप। अद्वय यानी एक

[1] देश, काल, वस्तु, स्वरूप।

पदार्थ, इस प्रकार जो सत्य अर्थात् सर्वदा भासमान ज्ञान, अर्थात् बोध स्वरूप अनन्त यानी व्यापक इस प्रकार जीवात्मा परमात्मा को सोचे।

एवं निरन्तराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना।
हरत्यविद्या विक्षेपान्रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—अहम् ब्रह्म एवास्मि एवम् निरन्तराभ्यस्ता वासना अविद्या विक्षेपान् हरति रसायनम् रोगानिव।

भाषा—पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर अभ्यास की हुई "मैं" ब्रह्म हूँ यह वासना अविद्या विक्षेप आदिको रोगों को रसायन की तरह नाश कर देती है।

विविक्तदेशे आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः।
भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

अन्वयः—विरागः विजितेन्द्रियः अनन्यधीः विविक्तदेशे आसीनः तं अनन्तं एकं आत्मानं भावयेत्।

भाषा—एकान्त स्थान में बैठा हुआ वैराग्ययुक्त जितेन्द्रिय अनन्यधी अर्थात् आत्मेतर सकल पदार्थ ज्ञान से रहित साधक पुरुष केवल उस (पूर्वोक्त) विभु आत्मा की भावना (चिन्ता) करै।

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

अन्वयः—सुधीः अखिलं दृश्यं धिया आत्मनि एव प्रविलाप्य सदा आत्मानं एकम् निर्मलाकाशवत् भावयेत्।

भाषा—श्रुति स्मृति विहित वर्णाश्रम धर्माऽनुष्ठान से जिसकी बुद्धि निर्मल हो गई है वह साधक अपने आत्मा में ही अखिल (सम्पूर्ण) विश्वरूप प्रपञ्च को ज्ञान से विलीन कर आकाशवत् सर्वव्यापक और निर्मल केवल आत्मा की ही भावना करे। भावना का स्वरूप इस प्रकार है जैसे कि वृष्टि होने पर पृथ्वी से अनन्त घासें उत्पन्न होकर ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के ताप से भस्म होकर बीज सहित फिर भी पृथ्वी में विलीन हो जाती हैं उस समय पृथ्वीमात्र ही दीखती है, उसी प्रकार व्यापक आत्मा से उत्पन्न यह दृश्य (संसार) अपने अपने कारण में विलीन हो जाता है उस समय केवल आत्मा ही साधक की ज्ञान दृष्टि में रह जाता है, उसी आत्मा की भावना करे।

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित्।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

अन्वयः—परमार्थवित् नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परिपूर्ण-चिदानन्दस्वरूपेण अवतिष्ठते।

भाषा—परम अर्थ यानी (मोक्ष) को जानने वाला साधक नाम अर्थात् विविध संज्ञा (वर्ण) यानी ब्राह्मण क्षत्रियादिक सब को छोड़ कर परिपूर्ण यानी व्यापक सब जगह रहने वाला सब जानने वाला चिदानन्द स्वरूप बनकर रहता है। अर्थात् ब्रह्म की समाधि जब साधक को होती है। तब न तो कोई जाति न कोई नाम रहता, अपरिच्छिन्न आत्मज्ञान का अनुभव करता है।

ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेय भेदः परात्मनि न विद्यते।

चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

अन्वयः—परात्मनि ज्ञातृ ज्ञान ज्ञेय भेदः न विद्यते हि परात्मा चिदानन्दैकरूपत्वात् स्वयमेव दीप्यते।

भाषा—समाधि दो प्रकार की होती है, सविकल्प और निर्विकल्प, सविकल्प समाधि में यद्यपि ज्ञाता ज्ञेय, का ज्ञान रहता है परन्तु निर्विकल्प समाधि में परमात्मा के सिवाय उसमें ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान का प्रतीत नहीं होता क्योंकि चिदानन्द स्वरूप होने से वह स्वयमेव प्रकाशित होता है।

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते।
उदितावगतिज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—एवं आत्मा अरणौ सततं ध्यानमथने कृते उदिता अवगतिः ज्वाला सर्वाऽज्ञानेन्धनं दहेत्।

भाषा—इस प्रकार आत्मा रूपी अरणी (यज्ञ में आग निकालने की एक लकड़ी होती है जिसको मथनकर आग निकालते हैं) के सर्वथा ध्यानरूप के मथन होने पर निकली हुई अग्नि सब अज्ञान रूपी ईन्धन को जला कर भस्म कर देती है।

अरुणेनेवबोधेन पूर्वं सन्तमसे हृते।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

अन्वयः—पूर्वं सन्तमसे हृते अरुणेन इव स्वयमेव बोधेन आत्मा अंशुमानिव आविर्भवेत्।

भाषा—सूर्य्य जैसे अपने उदय के पहले अपने अरुण (लाल) किरणों से अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार

सूर्य्य की तरह आत्मा भी पहले अपने (बोध) यानी ज्ञान रश्मि से अज्ञान रूपी अन्धकार को दूरकर फिर प्रकाशित होता है ।

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्यवदविद्यया ।
तन्नाशेऽप्राप्तवद्भाति स्वकण्ठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

अन्वयः—आत्मा सततं प्राप्तः अपि तु अविद्यया अप्राप्यवत् भाति तन्नाशे यथा स्वकण्ठाभरणम् ।

भाषा—आत्मा तो ज्ञान के द्वारा निरन्तर प्राप्त है लेकिन अज्ञान के कारण अप्राप्त के बराबर है । यानी मालूम होता है कि नहीं प्राप्त है । परन्तु अज्ञान के नाश हो जाने पर प्राप्त के समान ऐसा मालूम होता है कि कोई अपने गले की माला को भ्रम में पड़कर भूल गया हो फिर भ्रम के नाश हो जाने पर मिल गया ऐसा कहने लगता है ।

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता ।
जीवस्य तात्विके रूपे तस्मिन् दृष्टे निवर्तते ॥४५॥

अन्वयः—भ्रान्त्या स्थाणौ पुरुषवत् जीवता कृता ब्रह्मणि जीवता तस्मिन् तात्विके रूपे दृष्टे निवर्तते ।

भाषा—भ्रमवश वृक्ष के खुत्थे में आदमी है ऐसा कहकर गौर से देखकर खुत्था है ऐसा कहता है उसी प्रकार ब्रह्म में "जीव" का भी भाव जान पड़ता है किन्तु जीव का जो सत्यरूप है उसके जानने पर जीव का भाव दूर हो जाता है ।

तत्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमंजसा ।

अहं ममेति चाज्ञा बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—तत्वस्वरूपाऽनुभवात् उत्पन्नं ज्ञानं अञ्जसा दिग्भ्रमादिवत् अहं मम इति अज्ञानं तावदेव बाधते यावत् ज्ञानो न भवति।

भाषा—तत्वस्वरूप का अनुभव हो जाने पर यानी जब तुम वही हो (तत्वमसि) इसके अभ्यास से जीव और ब्रह्म की एकता हो जाने पर उसी से प्रगट हुए ज्ञान से शीघ्र ही दिशाओं के भ्रम तरह से "मैं" और "मेरा" यह अज्ञान मिटकर शुद्धरूप दीखने लगता है अर्थात् "अहं" "मम" यह अज्ञान तभी तक बाधा करता है जब तक ज्ञान नहीं होता है।

सम्यग् विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलंस्थितम्।
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञान चक्षुषा ॥ ४७ ॥

अन्वयः—सम्यग् विज्ञानवान् योगी ज्ञानचक्षुषा अखिलं स्वात्मनि एव स्थितं सर्वं एकं आत्मानं ईक्षते।

भाषा—योगी अर्थात् निश्चयात्मक ज्ञान वाला पुरुष ज्ञान के दृष्टि से सम्पूर्ण प्रपंच को अपनी आत्मा में स्थित और सब को एक ही आत्मा वाला दीखता है।

आत्मैवेदं जगत्सर्वं आत्मनोऽन्यन्न विद्यते।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

अन्वयः—यद्वद् घटादीनि मृदः तथा इदं जगत् आत्मा एव आत्मनः अन्यत् न विद्यते अतः सर्वं स्वात्मानं ईक्षते।

भाषा—जिस प्रकार घट, मठ, प्रभृति जितनी मृत्तिका की बनी हुई चीजें हैं वे मृतिका से भिन्न नहीं हैं किन्तु मृत्तिका ही

हैं। उसी प्रकार इस सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण आत्मा ही है। आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। योगी पुरुष जगत् को आत्मा से विभिन्न नहीं जानते हैं।

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत ।
सच्चिदानन्द-रूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—जीवन्मुक्तिः तद्विद्वान् पूर्वोपाधिगुणान् त्यजेत भ्रमर-कीटवत् सच्चिदानन्दरूपत्वात् भवेत् ।

भाषा—पहले जो जीव और ब्रह्म को एकता को समाधी कही है उसको जानकर जीवन्मुक्त पुरुष तो पहले के उपाधियों के गुणों को छोड़ देता है। जैसे भृङ्गी (एक कीड़ा है) अपने घर में किसी के बच्चे को डालकर भिन्न भिन्न करते करते भृङ्गी बना डालता है। उसी प्रकार तत्त्वमसि इस महावाक्य का अनुध्यान करते २ ब्रह्मज्ञान के साधक भी सच्चिदानन्दस्वरूप हो जाते हैं।

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादि राक्षसान् ।
योगी शान्तसमायुक्तो ह्यात्मारामोभिजायते ॥ ५० ॥

अन्वयः—योगी मोहार्णवं तीर्त्वा रागद्वेषादिराक्षसान् हत्वा शान्त-समायुक्तः आत्मारामः अभिजायते ॥

भाषा—योगी मोहरूपी समुद्र को पार करके, राक्षस रूपी राग द्वेष आदि का नाश करके शान्ति, दया, ज्ञान आदि को लेके साथ विराजना है। जैसे रामचन्द्र समुद्र लांघ कर राक्षसों को मार कर मन्त्री वर्गों के साथ विराजमान हुए थे।

वाह्यां नित्यसुखासक्तिं हित्वाऽऽत्मसुखनिर्वृतः ।
घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वान्तरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥

अन्वयः—बाह्यां नित्यसुखासक्तिं हित्वा आत्मसुखनिर्वृतः स्वच्छः सन् स्वान्तः एव घटस्थदीपवत् प्रकाशते ।

भापा—बाहर की इन्द्रियों के अनित्य विषय सुख को छोड़ कर आत्मा के सुखमें ही रमण कर स्वच्छ होकर अपने अन्तःकरण में ही घट के भीतर दीपक के समान प्रकाशमान होता है ।

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—मुनिः उपाधिस्थः अपि तद्धर्मैः न लिप्तः व्योमवत् सर्ववित् तथापि मूढवत् तिष्ठन् असक्तः वायुवत् चरेत् ।

भापा—मुनि तत्वमसि इस महावाक्य का मनन करने वाला उपाधियों के भीतर रहता हुआ भी उपाधियों के सुखादिक धर्मों में नहीं लगता, जैसे आकाश में जल और धूलि रहती है परन्तु स्पर्श नहीं होता, सर्वज्ञ होता हुआ भी मूर्ख के समान व्यवहार करे, कर्माऽनुसार उपलब्ध विषयों में लीन न होकर वायु के समान विचरे। जैसे वायु सुगन्ध दुर्गन्ध सबको स्पर्श करता हुआ भी उसमें आसक्ति नहीं रखता हुआ विचरता है, उसी प्रकार योगी भी विषयासक्ति त्याग कर अपने स्वरूप से विचरे ।

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः ।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ॥५३॥

अन्वयः—यथा जले जलं व्योम्नि वियत् तेजसि तेजः तथैव मुनिः उपाधिविलयाद् विष्णौ निर्विशेषं विशेत्।

भाषा—जैसे जल में जल, यानी वर्षा का जल गलियों में से बह कर चलता और नदी में मिलकर नदी का रूप बन जाता है। ऐसे ही आकाश में आकाश यानी जैसे घटाकाश घट रूप अपनी उपाधि के टूट जाने पर आकाश में मिल जाता है तेज से तेज यानी दीपक से आग बनाने पर वह भी आग में मिल जाता है। इसी प्रकार मुनि मनन करनेवाला योगी शरीररूपी उपाधि के न रहने पर व्यापक रूप ब्रह्म में सम्पूर्ण रूप से लीन हो जाता है।

यल्लाभान्नाऽपरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम्।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—यल्लाभात् अपरः लाभः न, यत्सुखात् अपरं सुखं न, यज्ज्ञानात् अपरं ज्ञानं न, तत् ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जिस लाभ के परे दूसरा लाभ नहीं, जिस सुख के परे दूसरा सुख नहीं, जिस ज्ञान के परे दूसरा ज्ञान नहीं, उसी को ब्रह्म रूप निश्चय करें। ब्रह्मज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं, क्योंकि सम्पूर्ण अज्ञान के नाश होने पर ब्रह्मज्ञान होता है। लाभ और सुख भी उससे परे दूसरा नहीं है।

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः।
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—यत् दृष्ट्वा परं दृश्यं न, यद्भूत्वा पुनर्भवः न, यज्ज्ञात्वा परं ज्ञानं न तत् ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जिसके देख लेने पर दूसरा कुछ देखने को नहीं रह जाता है। ब्रह्म के देख लेने पर सारा जगत दिखने लगता है। ब्रह्मरूप हो जाने पर फिर संसार में जन्म नहीं होता क्योंकि (न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते न स पुनरावर्तते) इस प्रकार श्रुति कहती है।

अवतरण—उस ब्रह्म की सत्ता की विभूति का वर्णन करते हैं।

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमद्वयम्।
अनन्तंनित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—यत् तिर्यक् ऊर्ध्वं अधः सच्चिदानन्दं पूर्णं अद्वयं अनन्तं नित्यं एकं ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जो पूर्व पश्चिम आदि चारों दिशाओं में ऊपर नीचे सब जगह सच्चिदानंद परिपूर्ण एक ही है उसके सिवाय और कुछ भी नहीं, इस तरह जो देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित नित्य एक स्वजातीय विजातीय वस्तु से भी रहित है उसी को "ब्रह्म" ऐसा निश्चय जाने।

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्यतेऽव्ययम्।
अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—यत् वेदान्तैः अतद्व्यावृत्ति रूपेण लक्ष्यते अव्ययं अखण्डानन्दं एकं तद् ब्रह्म इति अवधारयेत्।

भाषा—जो वेदान्त शास्त्र के द्वारा वह नहीं है, यह नहीं है, इस प्रकार समस्त प्रपञ्च पदार्थ का निषेध करके जो कि सर्व

निशिद्ध नहीं होता वह उसी रूप में लक्षित होता है। जो अव्यय यानी नाश रूपान्तर रहित है जो कि अखण्ड यानी सतत् आनन्द रूप है एक स्वजातीय भेद रहित उसी को ब्रह्म मानना चाहिए।

अखण्डानंदरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥५८॥

अन्वयः—तस्य अखण्डानन्दरूपस्य आनन्दलवाश्रिताः अखिलाः ब्रह्माद्याः तारतम्येन आनन्दिनः भवन्ति।

भाषा—उस अखण्डानन्दस्वरूप ब्रह्म के आनन्द का लवकणिकामात्र लेशमात्र है। उसके आश्रय से सम्पूर्ण ब्रह्मादिक देवता तारतम्य न्यूनाधिक आनन्दयुक्त होते हैं। ब्रह्मादिक देवताओं को जो आनन्द है वह भी ब्रह्मानन्द के अवान्तर ही है। योगी समाधिस्थ होकर उसी का अनुभव करते हैं।

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः।
तस्मात सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥५९॥

अन्वयः—अखिले क्षीरे सर्पि इव तद्युक्तं अखिलं वस्तु व्यवहारः तदन्वितः तस्माद् ब्रह्म सर्वगतम्।

भाषा—जिस प्रकार दूध के सब अवयवों में घृत अभेद रूप से रहता है। समस्त घट पट मठ आदि वस्तु तथा व्यवहार यानी बोलना चलना प्रभृति ब्रह्म से युक्त होते हैं। इसलिये ब्रह्म प्रत्येक पदार्थ में सर्वथा व्याप्त है।

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम्।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥६०॥

अन्वयः—यत् अनणु अस्थूलं अह्रस्वं अदीर्घं अजं अव्ययम् अरूप गुणवर्णाख्यं तत् ब्रह्म इति अवधारयेत् ।

भाषा—जो वस्तु न सूक्ष्म है, न स्थूल है, न छोटा है, न बड़ा है, अज अर्थात् उत्पत्ति रहित अव्यय रूपान्तर रहित रूप गुण तथा ब्राह्मण आदिक वर्ण से भिन्न है । इसको ब्रह्म जाने ।

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥६१॥

अन्वयः—यद्भासा अर्कादिः भासते यत् भास्यैः न भास्यते येन इदं सर्वं जगत् भाति तद्ब्रह्म इति अवधारयेत् ।

भाषा—जिसके ज्योति से चन्द्रमा, सूर्य्य, प्रभृति ग्रहगण प्रकाशित होते हैं । जो अपने प्रकाश से प्रकाशित ग्रहगणों से स्वयं प्रकाशित नहीं होता बल्कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है । उसको ब्रह्म जाने ।

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत् ।
ब्रह्म प्रकाशते वह्निः प्रतप्तायसपिण्डवत् ॥६२॥

अन्वयः—वह्निः प्रतप्तायसपिण्डवत् अन्तर्बहिः व्याप्य स्वयं प्रकाशते ब्रह्म अखिलं जगत् भासयन् स्वयं प्रकाशते ।

भाषा—लोहे का गोला आग में तपा देने पर जैसे आग गोला के भीतर तथा बाहर उस गोले को भी प्रकाशित करती है और स्वयं भी प्रकाशित होती है उसी प्रकार ब्रह्म भी सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता हुआ आप भी प्रकाशित होता है ।

जिस प्रकार अग्नि गोले में व्याप्त है ब्रह्म भी जगत के समस्त अवयवों में व्याप्त है। कोई स्थान नहीं जहाँ ब्रह्म न हो।

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यत्र किञ्चन।
ब्रह्मान्यद्भातिचेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका॥ ६३॥

अन्वयः—ब्रह्म जगद्विलक्षणम् ब्रह्मणः अन्यत्र किञ्चन न चेत ब्रह्मान्यत् भाति तर्हि यथा मरुमरीचिका मिथ्या तथा।

भाषा—ब्रह्म जगत् से विलक्षण है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं है। और जो ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है वह जैसे मृग तृष्णा झूठी है वैसे ही झूठा है।

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोन्यत्र तद्भवेत्।
तत्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्॥ ६४॥

अन्वयः—यत् दृश्यते यत् श्रूयते तत् ब्रह्मणः अन्यत्र भवेत् तत् ब्रह्म तत्वज्ञानात् सच्चिदानन्दं अद्वयम्।

भाषा—जो देखते हैं और जो सुनते हैं वह ब्रह्म से अन्य नहीं है यानी सम्पूर्ण ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म तत्वज्ञान से ही सच्चिदानन्द और अद्वैत रूप से भासता है।

सर्वगं सच्चिदात्मान ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत्॥ ६५॥

अन्वयः—ज्ञानचक्षुः सर्वगं सच्चिदात्मानं निरीक्षते, अज्ञान चक्षुः भास्वन्तं न ईक्षेत, अन्धवत् भानुम्।

भाषा—ज्ञानचक्षु वाले ज्ञानी लोगों को सर्वव्यापी सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म देख पड़ता है। अज्ञानी उस प्रकाशमान आत्मा को नहीं देख सकता, जैसे अन्धा सूर्य्य को नहीं देख सकता है।

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः।
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥६६॥

अन्वयः—श्रवणादिभिः उद्दीप्तः ज्ञानाग्निपरितापितः जीवः सर्वं मलात् मुक्तः स्वर्णवत् स्वयं द्योतते।

भाषा—श्रवण मनन निदिध्यासन इन प्रकारों से उत्पन्न हुई ज्ञानरूपी अग्नि से युक्त जीव सब मलों से छूट कर अग्नि से तपे हुए सुवर्ण के समान स्वयं प्रकाशित होता है।

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपनुत्।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

अन्वयः—बोधभानुः आत्मा हृदाकाशोदितः तमोऽपनुत् आत्मा सर्वव्यापी सर्वधारी सर्वं प्रकाशते, भाति।

भाषा—तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्यों से निर्मल बोध रूपी आत्मा सूर्य्य हृदय रूपी आकाश में उदय होकर अन्तःकरण के तम को नाशता है। आत्मा सब जगत में व्यापक है। जगत् के अज्ञान कार्य्य का अधिष्ठान रूप है। सबको प्रकाशित करता है। आप भी प्रकाशमान है।

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं
शीतादिहृन्नित्यसुखंनिरंजनम्।

यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः
स सर्ववित् सर्वगतो मृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

अन्वयः—यः दिग्देशकालाद्यनपेक्षिसर्वगं शीतादि हृत् नित्यसुखं निरंजनम् स्वात्मतीर्थं विनिष्क्रियः भजते स सर्वगतः सर्ववित् अमृतः भवेत् ।

भाषा—जो पुरुष दिशा–पूर्व, पश्चिम आदि, देश–पुरु मालव मगध आदि, काल–भूत, भविष्य, वर्तमान आदि की अपेक्षा न करके शीत उष्ण इनके नाशक नित्य सुख स्वरूप माया के कार्य जगत् रूप मल से विमुक्त शुद्ध आत्मतीर्थ को सब कार्यों को छोड़ कर सेवा करता है वह सर्व व्यापक सर्व ज्ञाता होकर अमृत रूप हो जाता है। इसलिये मुमुक्षु पुरुषों को आत्मतीर्थ की अवश्य सेवा करनी चाहिए ।

❀ शम् इति ❀



श्री विश्वेश्वर प्रेस, काशी में मुद्रित ।